Original Research Paper Statistics

जैन पुराणों में उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य

डॉ. राखी गुप्ता | व्याख्याता अर्थशास्त्र विभागए 1351, संन्तो ा सदन वर्कत नगर, जयपुर

KEYWORDS

18वीं ाताब्दी में हुई औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्योग धन्धों का विकास तीव्र गति से हुआ जिनमें यंत्रों संयंत्रों और मशीनों का उपयोग मुख्य रूप से होता है। इनमें लघु और बड़े उद्योगों को उनके पूंजी–निवेश के आधार पर विभाजित किया जाता हैं। आलोचित पुराणों में कारखाना पद्धति के अनुसार औद्योगिक साम्राज्य का उल्लेख भले ही ना हो पर सामूहिक उद्यमिता और बड़े पैमाने पर उत्पादन अवश्य होता था जहाँ बहुत सारे श्रमिक और कर्मचारी कार्य करते थे जिनकी तुलना वर्तमान की औद्योगिक इकाईयों से की जा सकती है।

समीक्षित पुराणो में व्यापारी के लिए वणिक् और व्यापार के लिए वणिज् ाब्द प्रयुक्त हुआ है। उस समय भारत के उद्योग–धन्धें काफी विकसित अवस्था में थे। अनेक राजपूत राज. ाओं जैसे पाल, परमार प्रतिहार, रा ट्रकूट, चौहान, चोल एवं चालुक्य वंशों के ाासकों ने अनेक उद्योग धन्धों के विकास में अहम् भूमिका निभाई थी जिससे अनेक प्रकार के उद्योग धन्धों जैसे वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, जवाहरात उद्योग आदि की काफी प्रगति हुई।[1]

आलोचित पुराणों के वर्णनों से वस्त्र उद्योग की उन्नति का पता चलता है। कपड़े कपास, ऊन, रेशम आदि पदार्थों से बनते थे। बनारस एवं मथुरा रेशमी और सूती वस्त्रों के प्रमुख केन्द्र बन गये थे। बुनकर, दर्जी और रंगरेज भी इस व्यवसाय से संबन्धित थे। कपड़ों की रंगाई और छपाई भी भारत में बहुत श्रे ठ की जाती थी। बंगाल, गुजरात और पैठन के बने हुए कपडे दूर–दूर तक प्रसिद्ध थे। अरब यात्री सुलेमान ने लिखा है कि बंगाल में बनाया गया सूती कपड़ा इतना अधिक बारीक था जैसा कि अन्य किसी देश में तैयार नहीं किया जाता था। इसके अतिरिक्त मगध, कामरूप, कलिंग, कश्मीर, मुल्तान, मध्य–प्रदेश और दक्षिण–भारत के विभिन्न स्थानों पर भी बहुत श्रे ठ और विभिन्न प्रकार के कपड़े तैयार किये जाते थे। कौलिक लोग वस्त्र बुनने का कार्य करते थे।[2]

आलोचित पुराणों के अनेक विवरणों से तत्कालीन युग के समुन्नत वस्त्रोद्योग पर प्रकाश पड़ता है। इस समय वस्त्रों पर सूती एवं रेशमी धागों से कढाई का काम खूब होता था। विविध रंगों से रंगाई का काम करके रंगीन वस्त्र निर्मित किये जाते थे। बादली रंग के वस्त्र, गेरूए वस्त्र, लाल रंग के साफें, आदि से इसकी पु ि ट होती है। बहुमूल्य वस्त्रों को सुरक्षात्मक दृ ि ट से पाटल में रखा जाता था। पुरु ाों के प्रधान वस्त्र उत्तरीय तथा अधोवस्त्र थे।[3]

व्यापार एवं वाणिज्य[4] –

क्रय–विक्रय को व्यापार और इन गतिविधियों में संलग्न व्यक्ति को व्यापारी कहा जाता है। व्यापार करना वाणिज्य है। वाणिज्य का आर्थिक विकास की दृ ि ट से अत्यधिक महत्त्व है। आदिपुराण में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चार विद्याओं का उल्लेख आया है तथा कृ ि, पैंुपालन एवं वाणिज्य को वार्ता कहा गया है। कौटिलीय अर्थाास्त्र में भी वार्ता की व्याख्या कृ ि, पैंुपालन और व्यापार के रूप में की गयी है। धान्य, पैंु, हिरण्य, ताम्रादि खनिज पदार्थ की उत्पत्ति का साधन वार्ता है। वार्ता के अभाव में आर्थिक समृद्धि सम्भव नहीं है। जहाँ कृ ि, पैंुपालन और वाणिज्य व्यवसायों की उत्पत्ति न हो वहाँ दौं की आर्थिक उन्नति कभी नहीं हो सकती। इसी कारण आदिपुराण में वाणिज्य व्यवसाय के साथ पैंुपालन और पैंु व्यापार को महत्त्व दिया गया है।[5]

दैनिक उपभोग की वस्तुओं जैसे नमक, मसाले, कपड़े आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता, ाासक वर्ग के लिये विभिन्न विलासिता की वस्तुओं का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आदान–प्रदान तथा व्यापारी वर्ग की लाभ प्राप्ति की आकांक्षा के कारण व्यापार किया जाना अनिवार्य था। इस कारण विभिन्न स्थानों पर उत्पन्न वस्तुएँ देश के एक भाग से दूसरे भाग में भेजी जाती थी और विभिन्न स्थानों ने स्थानीय वस्तुओं के उत्पादन में ख्याती प्राप्त कर ली थी।[6]

विनिमय के लिए क्रय ाब्द प्रयुक्त हुआ है पुराणों में वस्तुओं के क्रय–. विक्रय करने का वर्णन तो आया है परन्तु इसका माध्यम क्या था इसका स्प ट उल्लेख नहीं आया है। कहीं–कहीं इसके बारे में थोड़ी बहुत जानकारी अवश्य मिलती है। चारूदत्त नामक वणिक् अपनी स्त्री तथा माता के आभू ाणों को लेकर व्यापार के लिए जाता है तथा कपास खरीदता है। एक अन्य प्रसंग में बलदेव ने बाजार में अपना कड़ा और कुण्डल देकर उससे खाने–पीने की सामग्री खरीदी। इससे यह आभास होता है कि उस समय स्वर्णाभू ाण भी क्रय–विक्रय का माध्यम रहा होगा। मुख्य रूप से कौड़ी, स्फीटक मणि एवं दीनार आदि का उल्लेख आया है।

आलोचित पुराणों में कुछ व्यापारियों के उल्लेख भी मिलते है। अयोध्या नगरी में एक सुरेन्द्र दत्त नामक सेठ रहता था जो 32 करोड़ दीनारों का धनी था तथा वह व्यापार करने के लिए बाहर चला गया। वह दीनार दान में देता था। उत्तरपुराण में उल्लेख आया है कि सुमुख सेठ ने वीरदत्त को व्यापार हेतु बारह व र्ा के लिए बाहर भेज दिया था। कोई एक वणिक अपना खरीदा हुआ माल बेचने के लिए अमूल्य मणी लेकर राजा जरासन्ध से मिलने गया। तत्कालीन समय वाणिज्य सफल था तथा राज्य व्यापारियों के क्रय–विक्रय की अधिकता से अत्यधिक सम्पन्न था।[7]

व्यापारी दो प्रकार के बताये गये हैं – 1. स्थानीय व्यापारी 2. सार्थवाह

ग्राम–नगर के बाजारों में नित्य उपभोग की तथा अन्य सभी वस्तुएँ उप. लब्ध रहती थी। राजमार्गों तथा चौराहों पर भी खाने–पीने की चीजे मिल जाया करती थी। अलग–अलग वस्तुओं के लिए अलग–अलग बाज़ार भी होते थे तथा अनेक दुकानें वस्तु–विशे ा के लिए ही होती थी। स्थानीय व्यापारी के तीन प्रकार बताये गये हैं – वणिक्, गाथापति और श्रे ठी।

वणिक् के अन्तर्गत 'वणि', विवणि और 'कक्खपुडिय' के तीन भेद मिलते हैं। एक ही स्थान पर दुकान लगाकर बैठकर व्यापार करने वाले वणि, घूम पर व्यापार करने वाले विवाणि और बगल में माल की गठरी लेकर व्यापार करने वाले कक्खपुडिय वणिक् कहलाते थे। इस प्रकार के सामान्य व्यापारी बहुतायत में पाये जाते थे। गाथापति और श्रे ठी सम्पन्न वर्ग के व्यापारी होते थे। ये व्यापार के अतिरिक्त भी बहुत सारे काम–ध न्धे करते थे तथा व्यापार भी इनका वृहद् स्तर पर होता था। समाज और ाासन में गाथापति और श्रे ठी का अच्छा मानसम्मान था।[8]

कभी–कभी व्यापारी लोग बड़े–बड़े समूह में सार्थवाह के रूप में व्यापार के लिए जाया करते थे और अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर पँहुचा कर काफी लाभ कमाते थे। देशी और विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने में सार्थवाहों का अहम् योगदान रहता था। सार्थवाह अपने प्रस्थान से पूर्व अनेक तैयारियाँ करता था तथा यात्राओं से पूर्व उन्हें राजाओं से भी अनुमति लेनी पड़ती थी तथा राजा भी बीहड़ और भयानक रास्तों में उनकी सुरक्षा के लिए अपने सुरक्षाकर्मी भी नियुक्त करता था। सार्थवाह स्वयं भी सुरक्षा के व्यापक प्रबन्ध करते थे। सार्थवाह अपने खान–पान और सुख–सुविधाओं का पूरा ख्याल रखते थे। सार्थवाह अधिकांश रूप से विभिन्न प्रकार के मोती माणिक्यादि तथा सोने–चाँदी आदि का व्यापार करते थे। 'सार्थवाह धन, ऐश्वर्य तथा सेना, गुप्तचर आदि से सम्पन्न होते थे। सार्थवाहों का वर्ग व ाों में वापस लौटता था अतः उनके साथ क्रय–विक्रय की वस्तुओं के अतिरिक्त भोजन, पान आदि भी प्रचुर परिमाण में संचित

 ISSN - 2250-1991 | IF : 5.215 | IC Value : 77.65

रहते थे। हमारे इस कथन की पुि ट मेरूकदत्त नामक सेठ के आख्यान से होती है। यह सेठ व्यापारी, समुदायसंघ का अधिपति था और इसी के परामर्श से संघ का संचालन होता था। दु कर और विकट राहों पर दो–दो सार्थवाह भी साथ–साथ चलते थे। पाँच प्रकार के सार्थ बताये गये हैं :

1- भण्डी : इसमें माल ढोने के लिए ाटक आदि यान होते थे।
2. बहलिका : इसमें भारवाही पशु ऊँट, घोडे, बैल, खच्चर आदि होते थे।
3. भारवह : इस प्रकार के सार्थ में यात्री अपना भार स्वयं ढोते थे।
4. औदारिका : इसमें श्रमिकों का साथ होता था, जो उनकी आजीविका के लिए घूमते थे।
5. कार्याटिका : इसमें भिक्षुओं और साधु–साध्वियों का सार्थ होता था।
तत्कालीन समय के व्यापार, व्यवसाय और उद्योगों के विकास में सार्थ का अत्यधि ाक महत्त्व था।

श्रीभूति नामक पुरोहित सिंहपुर नगर की समस्त दिशाओं में भाण्डशालाएं बनवाकर व्यापारी वर्ग का बहुत विश्वास पात्र बन गया था। पद्मखण्ड नामक नगर में सुमित्र दत्त नामक वणिक रहता था। वह अपने पाँच रत्न श्रीभूति पुरोहित के पास रखकर जहाज द्व ारा कहीं गया था।

पशुओं का व्यापार भी किया जाता था। ग्वाले गाय, बैल आदि पशुओं को खरीदते थे और अधिक कीमत पर उन्हें बेचते थे। इस खरीद विक्रय में एक प्रतिभू जामिनदार भी होता था, जिसकी जमानत पर मवेशी को खरीदा जाता था। अतएव यह स्प ट है कि व्यापार – व्यवसाय का कार्य पर्याप्त समृद्ध था।

इस काल में व्यापार उन्नत अवस्था में था। विदेशों से व्यापार किया जाता था तथा व्यापार के लिये विदेश भी जाया जाता था। व्यापार स्थलमार्ग और जलमार्ग दोनों द्वारा सम्पादित होता था। अन्तः देशीय व्यापार में हाथी, बैल, घोडे आदि साधनों का प्रयोग एवं विदेशी व्यापार में नाव, जहाजों का प्रयोग होता था। आदिपुराण में पतन पत्तन और द्रोण मुख नगरों के उल्लेख से जलमार्ग से व्यापार का संकेत मिलता है। चारूदत्त की व्यापार यात्रा में जहाज के छह बार फटने का उल्लेख है। श्रीपाल की जलयात्राएँ भी व्यवसायियों के जल व्यापार को सूचित करती है। इसी सन्दर्भ में व्यापारियों की नौकाओं का मार्ग में टूट जाना, आँधी तूफानों में नौकाओं का फंस जाना आदि समुद्री व्यापारियों की अनेक मार्गगत कठिनाइयों का उल्लेख भी आया है।[9]

पुराणों से यह ज्ञात नहीं होता है कि दो युद्धरत देशों के बीच यातायात एवं वाणिज्य–व्यापार सम्बन्ध कैसे सम्पन्न होते थे। संभवतया आवागमन नि ाद्ध या निय. न्त्रित हो जाता हो क्योंकि कुछ उल्लेखों से ऐसा संकेत मिलता है कि राज्य में विदेशियों पर दृ ट रखने के लिए कर्मचारी नियुक्त होते थे और अमित्र देशों में आवागमन पर प्रतिबन्ध रहता था। ान्ति काल में वणिक्–व्यापारियों द्वारा अपनी राज्य सीमा से बाहर अन्य देशों में व्यापार करने से स्प ट होता है कि विभिन्न राज्यों में ान्तिकाल में आवागमन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता था वाणिज्य–व्यापार अबाध गति से होता था।[10]

सन्दर्भ सूची

1ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006,24 / 58–59
2ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 3 / 293
3ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 27 / 67
4ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 27 / 32
5ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006,45 / 67
6ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 16 / 240
7ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 27 / 31
8ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 3 / 198
9ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006,3 / 198,
10ण आचार्य रवि ेण : पद्म पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, 3 / 296